I मूल विषय

1.1 एक सुव्यवस्थित वित्तीय प्रणाली बचतकर्ताओं से निवेशकर्ताओं तक संसाधनों का सक्षम आबंटन सुकर बनाकर आर्थिक वृद्धि का संवर्धन करती है। वित्तीय प्रणाली के भीतर, बैंकिंग प्रणाली उत्पादक निवेशों की पहचान और उसके निधीयन के जरिए राष्ट्रीय आय के स्तर और वृद्धि दर के लिए महत्वपूर्ण प्रशाखन है। इससे, बदले में, आशा है कि पूंजी के अधिक सक्षम आबंटन तथा वृद्धि के पोषण को प्रेरणा मिलेगी। एक सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्धांत, जिसने उत्पादकता में सुधार के जरिए आर्थिक वृद्धि में वित्तीय विकास की भूमिका को स्वीकार किया, जोसेफ शुंपीटर द्वारा प्रस्तुत किया गया था (1911)। तथापि, काफी समय तक इस दृष्टिकोण पर उचित ध्यान नहीं दिया गया। 1970 के दशक के प्रारंभ तक एक विपरीत दृष्टिकोण भी प्रचलित था, जिसके अनुसार आर्थिक वृद्धि वित्तीय सेवाओं के लिए मांग पैदा करती है तथा वित्तीय प्रणाली इन मांगों के प्रति स्वतः रेस्पांड करती है (राबिन्सन, 1952)। इसका अभिप्राय यह है कि वित्तीय विकास कमोबेश स्वतः वृद्धि का अनुसरण करता है तथा यह आर्थिक विकास का उपोत्पाद है। नीतिनिर्माता तथा विद्वज्जन भी यह मानते हैं कि वित्तीय प्रणाली का 'प्रबंधन' सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसे बाजार की शक्तियों के भरोसे छोड़ने के बजाए एक बेहतर साधन है। तथापि, 'वित्तीय दमन' में यथाप्रदर्शित आयोजना प्रक्रिया की सीमाएं मुक्त और सक्षम वित्तीय प्रणाली द्वारा अदा की गई केंद्रीय भूमिका को रेखांकित करती हैं।

1.2 आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में वित्तीय विकास का महत्व 1970 के दशक के प्रारंभ में पुनः बढ़ गया, जब यह स्वीकार किया गया कि वित्तीय विकास का द्विस्तरीय प्रभाव है, अर्थात निवेश की दक्षता बढ़ाना और बचत में वृद्धि करना तथा इस प्रकार निवेश के पैमाने को व्यापक करना।इस चर्चा की अगुवाई मैककिन्नन (1973) तथा शा (1973) ने की, जिनका तर्क था कि सार्वजनिक ऋण के भार को नियंत्रित करने के लिए नियंत्रित निम्न ब्याज दर की नीतियों के कारण वित्तीय दमन की स्थिति आई। उदाहरण के लिए नियंत्रणों के फलस्वरूप कृत्रिम रूप से उत्पन्न कम अथवा ऋणात्मक वास्तविक ब्याज दरों के कारण बचत के लिए प्रोत्साहन कम हो गया जिसके परिणामस्वरूप निवेश और वृद्धि में कमी आई।दमित ऋण बाजारों का उदारीकरण विकास का पोषण कर सकता है क्योंकि ब्याज दरों को 'साम्य' स्तरों तक बढ़ाने से न सिर्फ बचत में वृद्धि होगी अपितु निवेशयोग्य संसाधनों का अधिक दक्षतापूर्ण उपयोग भी हो सकेगा।

1.3 यद्यपि मैककिन्नन-शा की परिकल्पना को काफी समर्थन मिला, इसकी कुछ आलोचना भी हुई। उदाहरण के लिए राबर्ट लुकास ने 1988 में इस बात पर बल दिया कि अर्थशास्त्री आर्थिक वृद्धि में वित्तीय कारकों की भूमिका पर बुरी तरह अत्यधिक बल देते हैं।तथापि, हाल के वर्षों में देशी वृद्धि के सिद्धांतों से आर्थिक विकास में दक्ष वित्तीय प्रणालियों के महत्व की बेहतर समझ हुई है। अब आम राय यह है कि आर्थिक वृद्धि तथा वित्तीय विकास के बीच एक सकारात्मक दुतरफा हेतुक संबंध है (ग्रीनवुड तथा जोवानोविक, 1990) । वित्तीय मध्यस्थता बचत का उपयोग निवेश के उत्पादक क्षेत्रों में करके आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा देती है, जबकि यह अलग-अलग व्यक्तियों को उनकी चलनिधि आवश्यकताओं से जुड़ी जोखिम कम करने की अनुमति देती है (बेन्सिवेंगा तथा स्मिथ, 1991)। लेवाइन (1997) के अनुसार, वित्तीय सेवाएं पांच प्रमुख चैनलों अर्थात, बचत संग्रहण, संसाधन आबंटन, जोखिम प्रबंधन, प्रबंधन निगरानी और व्यापार सुकर बनाने के माध्यम से आर्थिक वृद्धि को प्रभावित करती हैं। पांच प्रमुख चैनलों में से प्रत्येक पूंजी संचय तथा प्रौद्योगिकीय नवोन्मेष की प्रक्रिया दोनों में अंशदान करता है। इनसे, बदले में, सोलोव वृद्धि मॉडल के जरिए प्रत्यक्षतः आर्थिक वृद्धि का पोषण होता है।

1.4 वृद्धि में वित्त की भूमिका को आनुभविक कार्य द्वारा भी वैध ठहराया गया है (गेल्ब,1989; ग्रीन तथा विल्लानेवा, 1991; गेर्टलर तथा रोज़,1991; डी ग्रेगोरिओ तथा गिडोत्ती, 1995; लेवाइन तथा जेरवोस, 1998)। इन अध्ययनों में से अधिकांश सीमा पार के विश्लेषण पर आधारित हैं जिनमें यह निष्कर्ष निकलता है कि ऋण अथवा बाजार पूंजीकरण जैसे वित्तीय विकास संबंधी उपाय का वृद्धि पर सकारात्मक और उल्लेखनीय असर पड़ता है।इस बात का साक्ष्य है कि वित्तीय रूप से विकसित अर्थव्यवस्थाएं अपने संसाधनों का आबंटन अधिक दक्षतापूर्वक करती हुई प्रतीत होती हैं (कार्लिन तथा मेयर, 1998; बेक आदि, 2001)। जीडीपी की तुलना में देशी स्टॉक तथा ऋण बाजारों के आकार द्वारा प्रतिपत्रित विकसित देशी वित्तीय बाजार पूंजी के बेहतर आबंटन के साथ जुड़े हुए पाए जाते हैं (वर्गलर, 2000)। स्टाक बाजारों की आबंटनात्मक दक्षता (यथा स्टाक की कीमतों की समकालिकता) की माप बाजार के आकार, अस्थिरता, देश के आकार, अर्थव्यवस्थाओं के विशाखीकरण तथा फर्मस्तरीय मूलभूत तत्वों के सहचलन के साथ उतनी ही जुड़ी होती है, जितनी संस्थागत विकास की माप के साथ (मोर्क आदि, 2000)।

1.5 1960-1989 के लिए 80 देशों के आंकड़ों का उपयोग कर किंग तथा लेवाइन (1993) ने बैंकों द्वारा निजी क्षेत्र को दिए गए कुल ऋण सहित वित्तीय विकास के अनेक उपायों और आर्थिक वृद्धि के बीच

उल्लेखनीय सकारात्मक संबंध पाया। उनका यह निष्कर्ष कि 1960 में वित्तीय विकास का आरंभिक स्तर बाद में अगले 29 वर्षों तक वृद्धि की औसत दर का महत्वपूर्ण भविष्यवाचक था, वित्तीय क्षेत्र के विकास और समग्र आर्थिक विकास के बीच हेतुक संबंध सुझाता है। लेवाइन, लोयजा तथा बेक (2000) ने 74 देशों के आंकड़ों का उपयोग करते हुए यह पाया कि वित्तीय मध्यस्थता का बाह्य घटक सकारात्मक रूप से आर्थिक वृद्धि से जुड़ा हुआ है। साथ ही कारण-कार्य-संबंध के मुद्दे का समाधान करते हुए 41 देशों के उद्योग स्तरीय आंकड़ों का उपयोग कर राजन और जिंगेल्स (1998) का निष्कर्ष था कि बाह्य वित्तपोषण पर अधिक निर्भर रहनेवाले उद्योगों की वृद्धि तीव्रतर होती है। इसी तरह, 40 देशों के फर्मस्तरीय आंकड़ों का उपयोग करते हुए डेमिर्गुक-कुंट तथा मैक्सिमोविक (2002) ने पाया कि वित्तीय रूप से अधिक विकसित अर्थव्यवस्थाओं में अधिकांश फर्मों की वृद्धि बाह्य वित्त तक पहुंच न रखनेवाले उसी तरह के फर्मों द्वारा प्राप्त वृद्धि की अधिकतम दर से अधिक रही।

1.6 आर्थिक विकास के लिए वित्तीय क्षेत्र के महत्व को सुझाते हुए मैककिन्नन-शा के शोध-प्रबंध तथा आनुभविक साहित्य ने कई उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को उनके वित्तीय क्षेत्रों में सुधार लागू करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसे 1990 के दशक के मध्य में पूर्वी एशियाई संकट द्वारा बल मिला जिसमें यह सुझाया गया कि कमजोर वित्तीय प्रणाली वास्तविक अर्थव्यवस्था के लिए गंभीर खतरा हो सकती है। अतः हाल के वर्षों में वित्तीय प्रणाली को सुदृढ़ करने पर बल बढ़ा दिया गया है।

1.7 जहां वित्त के महत्व को अब व्यापक तौर पर स्वीकार किया गया है, हाल तक यह कम स्पष्ट था कि एक सफल वित्तीय प्रणाली की आवश्यक विशिष्टताएं क्या हैं। यह मुद्दा वित्तीय संस्थाओं की भूमिका के बारे में वादविवाद से संबंधित था यथा बैंक बनाम वित्तीय बाजार, जो बचतकर्ताओं से निवेशकों तक संसाधनों के अंतरण के लिए दो सामान्य संस्थाएं हैं तथा इनमें से प्रत्येक के अपने अलग फायदे/नुकसान हैं।

1.8 वित्तीय संस्थाओं को अच्छे उधारकर्ता और खराब उधारकर्ता के बीच अंतर करने के लिए सूचना एकत्र करने और उसे प्रोसेस करने का स्पष्ट लाभ मिलता है। इस प्रकार, वित्तीय संस्थाएं बाजारों की तुलना में परियोजनाओं की दक्षता और उत्पादकता पर अधिक कारगर तरीके से निगरानी रख सकती हैं। वस्तुतः हाल के वर्षों में बैंकों का अस्तित्व बचत जुटाने एवं उनका निवेश करने की उनकी योग्यता संबंधी संस्थापित स्पष्टीकरण की तुलना में विषम सूचना एवं नैतिक खतरे की समस्याओं की मौजूदगी में से उत्पन्न सूचना एकत्र करने की उनकी क्षमता पर अधिक निर्भर है। बचतकर्ताओं के पास सामान्य तौर पर कंपनियों के कार्यों के बारे में अपूर्ण जानकारी होती है जिसके कारण बाजार से प्रत्यक्ष वित्तपोषण प्राप्त करना बाद वाले के लिए अधिक कठिन हो जाता है। बैंकों द्वारा मध्यस्थता करने से एजेंसी संबंधी ऐसी समस्याएं कम हो जाती हैं। हाल का अनुसंधान यह सुझाता है कि चूंकि वित्तीय संसाधन प्रदान करनेवालों के द्वारा एक कंपनी के बारे में जानकारी प्राप्त किए जाने की लागत अधिक है, अतः कंपनियों का वित्तपोषण अधिक दक्षतापूर्वक किया जा सकता है बशर्ते भावी निवेशक इस तरह की जानकारी प्राप्त करने का कार्य किसी विशेषज्ञ संगठन को प्रत्यायोजित कर दें (डायमंड, 1984)।

1.9 विकासशील देशों की फर्में सामान्यतः ऋण वित्त, बैंक ऋण सहित, पर अधिक निर्भर रहती हैं। इक्विटी के बजाय ऋण पर बल विभिन्न कारणों से दिया जाता है।विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में विकसित देशों की अपेक्षा जोखिम प्रीमियम अधिक होने के कारण इक्विटी की लागत ऋण की लागत की तुलना में प्रायः अधिक उच्चतर होती है। कृत्रिम रूप से दमित ब्याज दरों की मौजूदगी इस समस्या को और बढ़ा देती है। विकासशील देशों में ऋण पर अधिक निर्भरता के अन्य कारणों में शामिल हैं - इक्विटी बाजारों की दुर्बलता, उपयुक्त लेखांकन प्रथाओं की कमी तथा पर्याप्त कारपोरेट अभिशासन प्रथाओं का अभाव। बैंक ऋण पर अधिक निर्भरता तथा बाह्य वित्त के लिए एवजियों के अभाव को देखते हुए, बैंक और अन्य मध्यस्थ अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं।विकासशील देशों में वित्तीय मध्यस्थ, विशेष तौर पर, महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं जहां उद्योग के अलावा कृषि भी अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है।इसके अलावा औद्योगिक और सेवा क्षेत्र में अनेक छोटे और मध्यम उद्यम भी हैं जो पूंजी बाजार तक नहीं पहुंच पाते हैं तथा जिन्हें अपनी निधीयन अपेक्षाओं के लिए वित्तीय संस्थाओं पर निर्भर रहना पड़ता है।

1.10 पूंजी बाजारों का उपयोग उन कार्यकलापों के निधीयन के लिए किया जा सकता है, जिनकी जोखिम अधिक आसानी से मापी जा सके तथा वर्गीकृत की जा सके ताकि तदनुसार उनका निधीयन करने के लिए वित्त जुटाने हेतु मानकीकृत लिखतें जारी की जा सकें। दूसरी ओर, बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाएं उनमें निहित विभिन्न प्रकार की जोखिमों को हिसाब में लेते हुए अधिक जटिल कार्यकलापों का निधीयन कर सकती हैं। इसे भी ऋण देनेवाले और लेनेवाले के बीच परस्पर संबंध द्वारा समर्थ बनाया जाता है, जिसे निरंतर पर्यवेक्षण से बल मिलता है। इस बहस के बावजूद, वस्तुतः दोनों प्रणालियां अधिकांश देशों में साथ-साथ मौजूद होती हैं, हालांकि एक प्रणाली दूसरी की अपेक्षा अधिक प्रमुख हो सकती है। आम तौर पर, बैंक आधारित प्रणालियां उन देशों में सुदृढ़तर होती हैं जहां औद्योगिक विकास में सरकारों की प्रत्यक्ष भूमिका होती है, यथा 19वीं सदी में जर्मनी तथा 20वीं सदी में जापान, पूर्वी एशिया, दक्षिण-पूर्वी एशिया, चीन और भारत (मोहन, 2004 क)। ऐतिहासिक अनुभव यह सुझाते हैं कि दोनों प्रक्रियाएं अच्छी तरह कार्य करती हैं। जहां यूके और यूएस में

बाजार आधारित प्रणाली ने अच्छी तरह कार्य किया, वहीं जर्मनी और जापान में बैंक आधारित प्रणाली सफल रही। पूर्वी एशिया संकट के बाद जब यह अनुभव हुआ कि वित्तीय प्रणालियों के सुचारु तरीके से कार्य करने के लिए उन्हें अच्छी तरह विशाखीकृत किए जाने की जरूरत है जहां वित्तीय बाजारों और वित्तीय मध्यस्थों दोनों की महत्वपूर्ण भूमिकाएं हों, एक प्रक्रिया की तुलना में दूसरी प्रक्रिया की वरिष्ठता के बारे में वादविवाद समाप्त हो गया।

1.11 जहां बैंक और वित्तीय बाजार दोनों महत्वपूर्ण हैं, कई कारणों से बैंकों का विशेष महत्व है। बैंकिंग सिद्धांतों के अनुसार, बैंकों का अस्तित्व इसलिए है क्योंकि वे कतिपय विशेष कार्य करते हैं, जिनकी नकल वित्तीय सेवा प्रदान करनेवाली अन्य कोई फर्म नहीं कर सकती। कीन्स ने बैंकों के दो प्रमुख कार्यों अर्थात वित्तीय मध्यस्थता और मुद्रा सृजन की पहचान की। वृद्धि का वित्तपोषण करने के अलावा बैंक ऋण में घटबढ़ उन केंद्रीय बैंकों के लिए भी मौद्रिक नीति के संप्रेषण का महत्वपूर्ण माध्यम है जो अपने नीति संबंधी रुख के संप्रेषण के लिए ब्याज दरों पर निर्भर रहते हैं। केंद्रीय बैंक द्वारा नीतिगत ब्याज दरों का अनुकूलन ऋण बाजार की स्थितियों को प्रभावित करता है जो मौद्रिक संप्रेषण के परंपरागत ब्याज दर माध्यम के प्रभावों को प्रबलित करता है।बैंकों का भी ‘विशेष’ स्थान है क्योंकि उनके परिचालनों का प्रणालीगत निहितार्थ है। बैंक न सिर्फ बड़ी मात्रा में असंपार्श्विकीकृत सार्वजनिक निधियों को न्यासीय क्षमता में स्वीकार और नियोजित करते हैं, अपितु ऋण सृजन के जरिए ऐसी निधियों के लिए लीवरेज भी करते हैं। बैंकों के स्वामियों अथवा शेयरधारकों का एक छोटा सा हिस्सा ही होता है तथा बैंकों की क्षमता की काफी लीवरेजिंग (एक के प्रति दस से अधिक) उन्हें सार्वजनिक निधियों की बहुत बड़ी मात्रा का नियंत्रण प्रदान कर देती है।इस प्रकार बैंकों को विशेष प्रकार का वित्तीय मध्यस्थ माना जाता है जिनके साथ विनियामक प्राधिकारियों द्वारा अलग व्यवहार किए जाने की जरूरत है। तथापि, केलोमिरिस और कह्न (1991), फ्लेनरी (1994), तथा डायमंड और राजन (2001) की दलील है कि बैंकों में पूंजीगत संरचना कमजोर है, अतः जमाराशि भगदड़ के प्रति उनकी सुभेद्यता महत्वपूर्ण आर्थिक कार्य पूरा करती है। जमाराशि के प्रति भगदड़ एक सशक्त अनुशासनात्मक उपाय को दर्शाती है जो जोखिम उठाने और संसाधनों के दुराबंटन के लिए बैंकों के प्रोत्साहनों को सीमित करती है। यह बैंकों के ऋण संविभाग में कुछ हद तक गुणवत्ता का आश्वासन प्रदान करता है।

1.12 पूरे विश्व में अविनियमन, सूचना प्रौद्योगिकी में प्रगति तथा वैश्वीकरण के प्रभाव के तहत 1980 के दशक के प्रारंभ से बैंकिंग उद्योग में रूपांतरण हुआ है (बाक्स I.1)।

1.13 अविनियमन, प्रौद्योगिकी और वैश्वीकरण की शक्तियों ने प्रतिस्पर्धात्मक दबाव बढ़ा दिया है, जिससे (क) पुनर्विन्यास और समेकन की सुदृढ़ शक्तियों के सक्रिय होने से पूरे विश्व में बैंकों की संख्या कम हुई है; तथा (ख) बैंकों को परंपरागत उत्पादों के बाहर राजस्व के नए स्रोत खोजने की प्रेरणा मिली है। इससे, बदले में, विभिन्न वित्तीय सेवाएं प्रदान करनेवालों तथा वित्तीय संगुटों के उदय के बीच अंतर समाप्त हुआ है। यद्यपि इन गतिविधियों ने लेनदेन की लागतों को कम करके संस्थाओं को अधिक सक्षम बनाया है, उन्होंने संस्थाओं पर आधारित परंपरागत विनियामक व्यवस्थाओं को भी चुनौती दी है। साथ ही संस्थाओं के लाभ मार्जिन को कम करके प्रतिस्पर्धात्मक दबावों में वृद्धि के कारण वे अधिक जोखिमपूर्ण नीतियों का अनुसरण कर सकते हैं जिससे चूक की संभावना बढ़ जाती है। वित्तीय अस्थिरता एक विवेकपूर्ण समष्टि आर्थिक नीति का अनुसरण करने की देश की योग्यता को भी प्रभावित कर सकती है। अतः वित्तीय संस्थाओं की सुरक्षा और सुदृढ़ता नीतिनिर्माण में केंद्रीय स्थान पर आ गई हैं।

1.14 उदारीकरण और वैश्वीकरण की शक्तियों के तहत कई बैंकिंग संस्थाएं अपने गृह देश तथा परंपरागत व्यवसाय से आगे निकल रही हैं और इस प्रकार बड़े अंतरराष्ट्रीय बैंकों का उदय हुआ है। कई अभिनव प्रॉडक्ट तथा कारोबार करने के नए तरीकों का भी उदय हुआ है, जिनके कारण प्रतिभूतिकरण, डेरिवेटिव तथा अन्य वित्तीय प्रॉडक्ट के व्यापक उपयोग से परंपरागत बैंकिंग कार्यों को पूंजी बाजारों के परिचालन के साथ जोड़ा गया है, जबकि इन गतिविधियों के कारण वित्तीय मध्यस्थता में कुछ सीमा तक दक्षता आई है तथा पिछले साल नए मुद्दे उभर कर आए हैं जिन पर ध्यान दिए जाने की जरूरत है। इन बड़े बैंकों में से अधिकांश, यदि सब नहीं, वित्तीय संगुट बन गए हैं जो वित्तीय क्षेत्र के विभिन्न खंडों में कार्य कर रहे हैं। वित्तीय लेनदेनों तथा वित्तीय नवोन्मेषों के तीव्रतर संप्रेषण की ओर अग्रमुख प्रौद्योगिक गतिविधियों तथा सीमा पार पूंजी प्रवाह की अनुमति देने के लिए राष्ट्रीय अवरोधों के कम होने दोनों से उक्त गतिविधि संभव हुई है।

1.15 तथापि, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों की हाल की गतिविधियों ने जोखिम के वर्तमान मूल्यन तथा बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं में नियोजित प्रबंधन साधनों और तकनीकों के बारे में, विशेषतः ‘वितरित करने के लिए उत्पन्न करें’ मॉडल पर आधारित व्यावसायिक रणनीतियों, प्रतिभूतिकरण संबंधी मुद्दों, तुलनपत्र बाह्य एक्सपोजरों में वृद्धि, नलिकाओं (कांड्यूट्स) के प्रति चलनिधि संबंधी वचनबद्धताओं तथा संरचित ऋण प्रॉडक्टों संबंधी मूल्यनों के बारे में कई चिंताएं उत्पन्न कर दी हैं। क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों की कार्यप्रणाली तथा रेटिंग के बारे में संस्थागत निवेशकों पर अत्यधिक निर्भरता पर भी सवाल उठाए गए हैं।

बॉक्स I.1
बैंकिंग क्षेत्र का रूपांतरण - प्रमुख वाहक

बैंकिंग, विशेष रूप से उभरती अर्थव्यवस्थाओं में, परंपरागत रूप से अत्यधिक संरक्षित उद्योग रहा है जिसमें जमाराशि तथा उधार के लिए ब्याज दर की संरचना विनियमित रही है और विदेशी और देशी प्रवेश पर प्रतिबंध रहे हैं। तथापि, विनियामकों पर इस बात पर जोर दिया गया कि वे 1990 के दशक में वैश्विक बाजार एवं प्रौद्योगिकीय गतिविधियों, समष्टि आर्थिक दबावों और बैंकिंग संकट के प्रभाव के तहत बैंकिंग क्षेत्र को अविनियमित करें। जमा दरों पर अधिकतम सीमा हटाने तथा चालू खातों पर ब्याज अदायगी की मनाही समाप्त करने जैसे कुछ उपायों ने बैंकों पर प्रतिस्पर्धी दबावों में उल्लेखनीय रूप से वृद्धि की और इस प्रकार बैंकिंग उद्योग की संरचना में परिवर्तन किया। अविनियमन के साथ पूंजी पर्याप्तता पर काफी बल दिया गया है जिससे बैंकों को कुछ आस्तियों को प्रतिभूतिकृत करने, अधिक शुल्क आधारित आय अर्जित करने और दक्षता में सुधार लाने के लिए प्रोत्साहन मिला है। कुछ उभरती अर्थव्यवस्थाओं में विनियामक पूंजी की उच्चतर अपेक्षा भी खराब कार्यनिष्पादन वाले बैंकों के विलय (अथवा विदेशी बैंकों को बिक्री) के लिए एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक बन गई।

अविनियमन से बैंकों और गैर बैंकों के बीच, विशेष रूप से बड़ी कंपनियों को उधार देने के लिए प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। वित्तीय सेवा उद्योग की संरचना को बदलने में वित्तीय संस्थाओं का गैर विशेषज्ञीकरण एक महत्वपूर्ण शक्ति है। बीमा प्रॉडक्ट, म्यूच्युअल फंड और अन्य वित्तीय सेवाएं प्रदान करते हुए बैंक सभी वित्तीय सेवाओं के लिए एकस्थलीय बिक्री केंद्र के रूप में उभर रहे हैं। प्रतिभूतिकरण ने परंपरागत उधार प्रक्रिया को विभिन्न भागों में खोलने की अनुमति दी है - ऋण शुरू करना, दूसरों को बिक्री करने के लिए उन्हें पैकेज करना, ऋणों की चुकौती तथा ऋणों का निधीयन। इससे, बदले में, बैंकों और गैर बैंकिंग फर्मों के बीच प्रतिस्पर्धा तीव्र हुई।

हाल में प्रौद्योगिकी गतिविधियों ने बैंकिंग व्यवसाय को विभिन्न तरीके से प्रभावित किया है - प्रत्यक्ष तौर पर, जोखिम प्रबंधन एवं वित्तीय प्रॉडक्टों के विपणन में सूचना प्रौद्योगिकी (आइटी) अनुप्रयोगों के माध्यम से तथा अप्रत्यक्ष तौर पर, कारपोरेट व्यवहार एवं वित्तीय बाजारों के विकास, विशेष तौर पर नए पूंजी निवेशों के वित्तपोषण के क्षेत्र में, पर इसके प्रभाव के माध्यम से। प्रौद्योगिकीय नवोन्मेषों से नई वित्तीय लिखतों का विकास तथा जानकारी एकत्र करने, उसे प्रोसेस करने और प्रेषित करने की लागत में तीव्र कटौती संभव हुई है। इससे नए बाजारों का सृजन हुआ है। वाणिज्यिक बैंकिंग क्षेत्र में एटीएम, डेबिट कार्ड, टेलीफोन, इंटरनेट तथा इलेक्ट्रॉनिक बैंकिंग जैसी कई सेवाएं बैंकिंग का अभिन्न अंग बन गई हैं।

सरकारी नीति तथा संचार सुविधाओं में सुधार के समन्वय द्वारा चालित व्यापार और वाणिज्य के अवरोधों में कमी के साथ वित्तीय सेवाओं का बाजार अधिकाधिक वैश्विक होता जा रहा है। सीमा पार गैर वित्तीय कंपनियों की वृद्धि के फलस्वरूप ऐसी संस्थाओं की मांग बढ़ी है जो सीमा पार वित्तीय सेवाएं प्रदान कर सकें। हाल के वर्षों में वित्तीय सेवा उद्योग में प्रतिस्पर्धा में वैश्विक अवरोधों में काफी कमी आई है। पूरे विश्व में अविनियमन से सीमा पार तथा विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाओं के बीच बैंकों के समेकन को प्रोत्साहन मिला है। आइटी की प्रगति ने अलग-अलग स्थलों से व्यापक सूचना प्रवाहों के प्रबंधन की अनुमति संस्थाओं को देकर भौगोलिक पहुंच बढ़ाने को सुकर बनाया है।

संदर्भ :

हॉकिन्स, जे.तथा डी. मिहालजेक. 2001. 'उभरती बाजार अर्थव्यवस्था में बैंकिंग उद्योगः प्रतिस्पर्धा, समेकन और प्रणालीगत स्थिरता : एक विहगावलोकन', बीआइएस पत्र सं.4 ।

भारत में बैंकिंग का विकास

1.16 कई अन्य उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की तरह, भारत में वित्तीय प्रणाली में परंपरागत रूप से वित्तीय मध्यस्थों, विशेष तौर पर बैंकिंग संस्थाओं, की प्रधानता रही है। भारत में बैंकिंग का लंबा इतिहास है तथा विभिन्न चरणों से गुजरते हुए कई सालों में इसका विकास हुआ है। आजादी के समय भारतीय बैंकिंग प्रणाली कमजोर थी। समग्र बैंकिंग क्षेत्र निजी क्षेत्र में था तथा कृषि और अन्य जरूरी क्षेत्रों की ऋण संबंधी अपेक्षाओं की अनदेखी की जा रही थी। बैंकिंग प्रणाली को आयोजना और आर्थिक नीति की आवश्यकताओं के साथ बेहतर रूप से संरेखित करने के लिए 1967 में बैंकिंग क्षेत्र पर सामाजिक नियंत्रण की नीति शुरू की गई। 1969 में निजी क्षेत्र के बैंकों का राष्ट्रीयकरण भारत में बैंकिंग क्षेत्र के इतिहास की प्रमुख उल्लेखनीय घटना है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के साथ (1969 में 14 तथा पुनः 1980 में 6), बैंकिंग क्षेत्र का प्रमुख घटक सरकार के नियंत्रण के तहत आ गया। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद शाखा नेटवर्क में व्यापक विस्तार के फलस्वरूप बैंकों द्वारा बड़ी मात्रा में जमा संग्रहण किया गया जिससे अर्थव्यवस्था की समग्र बचत दर बढ़ाने में मदद मिली। तथापि, इस अवधि में बैंकों के संसाधनों का एक बड़ा भाग निदेशित ऋण और निदेशित निवेशों के द्वारा बाजार दर से नीचे की दर पर पूर्वक्रीत कर लिया गया था। अतः बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता प्रभावित हुई। बैंकों के पास बड़ी मात्रा में अनर्जक आस्तियां भी थीं। उनका पूंजी आधार भी कमजोर हुआ।

1.17 वर्षों से प्रणाली के अंतर्गत आ गई कई कमजोरियों को दूर करने तथा एक सुदृढ़, प्रतिस्पर्धी और स्फूर्त बैंकिंग प्रणाली बनाने की दृष्टि से 1990 के दशक के प्रारंभ में कई उपाय शुरू किए गए। पहला, विवेकपूर्ण मानदंड लागू करके बैंकिंग प्रणाली को मजबूत बनाया गया, जिसे बाद में अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप सख्त किया गया। दूसरा, निजी

क्षेत्र के नए बैंकों के प्रवेश तथा विदेशी बैंकों की मौजूदगी में वृद्धि की अनुमति देकर बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ा दी गई। निजी क्षेत्र के बैंकों में 74 प्रतिशत तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की भी अनुमति दी गई। तीसरा, सरकारी क्षेत्र के बैंकों को पूंजी बाजार में जाने की अनुमति दी गई तथा उन्हें परिचालनगत लचीलापन और कार्यपरक स्वायत्तता भी प्रदान की गई। चौथा, नियंत्रित ब्याज दरों की प्रणाली को करीब-करीब समाप्त कर दिया गया तथा आरक्षित निधि अपेक्षाओं के रूप में पूर्वक्रयों को कम कर दिया गया। पांचवां, सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली तैयार करने में पर्यवेक्षणात्मक प्रणाली की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए उसमें सुधार लाया गया। छठा, कंपनी अभिशासन प्रथाओं तथा प्रकटीकरण मानदंडों को मजबूत बनाया गया। सातवां, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, शहरी सहकारी बैंकों और ग्रामीण सहकारिता को भी सुदृढ़ किया गया।

1.18 निरंतर विकास के फलस्वरूप, बैंकिंग क्षेत्र के आकार और उसकी संरचना में उल्लेखनीय बदलाव आया। भारत में वर्तमान बैंकिंग संरचना में वाणिज्य बैंक, शहरी सहकारी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (आरआरबी) तथा ग्रामीण सहकारी बैंक, जिसमें अल्पावधि सहकारी ऋण संरचना (राज्य सहकारी बैंक तथा जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक) और दीर्घावधि ऋण संरचना (राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक तथा प्राथमिक सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक) शामिल हैं, शामिल हैं । वाणिज्य बैंक भारतीय वित्त प्रणाली का आधारस्तंभ हैं जिनमें मार्च 2007 के अंत की स्थिति के अनुसार सभी वित्तीय संस्थाओं की कुल आस्तियों का लगभग तीन-चौथाई समाहित है (सारणी I.1)। 96 आरआरबी, आकार में छोटा होने के बावजूद, ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शहरी और ग्रामीण सहकारिताओं के दो व्यापक खंडों सहित सहकारी बैंकिंग प्रणाली भारतीय बैंकिंग प्रणाली का एक अभिन्न और व्यापक भाग है। शहरी सहकारी बैंकों (यूसीबी) के रूप में संदर्भित प्राथमिक सहकारी बैंक भी देश के शहरी और अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों की बढ़ती हुई ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यापक नेटवर्क और व्यापक व्याप्ति सहित ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थाएं गरीबों के बीच तथा दूरस्थ क्षेत्रों में बैंकिंग की प्रवृत्ति पैदा कर संस्थागत ऋण का दायरा बढ़ाने में महत्वपूर्ण विकासात्मक भूमिका निभाती हैं।

1.19 भारत में बैंकिंग क्षेत्र न सिर्फ जमा संग्रहण कर एवं उसे निवेश कर, अपितु जीडीपी में प्रत्यक्ष अंशदान कर तथा रोजगार उत्पन्न कर अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 2006-07 में बैंक जमाराशियां घरेलू क्षेत्र की वित्तीय आस्तियों का 56.5 प्रतिशत थीं। घरेलू क्षेत्र की वित्तीय आस्तियां बचत का प्रमुख रूप हैं। घरेलू क्षेत्र की बचत का संग्रहण कर बैंकिंग क्षेत्र निवेश और वृद्धि के संवर्धन में उल्लेखनीय भूमिका

सारणी 1.1: भारत की वित्तीय मध्यवर्ती संस्थाएं*
(मार्च 2007 के अंत में)

संस्था का प्रकार	संस्थाओं की संख्या	कुल आस्तियों में हिस्सेदारी (प्रतिशत)
क. वाणिज्यिक बैंक	**182**	**75.2**
क) अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (आरआरबी को छोड़कर)	82	72.9
i) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	28	51.4
ii) निजी क्षेत्र के बैंक	25	15.7
iii) विदेशी बैंक	29	5.9
ख) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	96	2.2
ग) स्थानीय क्षेत्र बैंक	4	0.0
ख. सहकारी बैंक	**1,09,310**	**12.8**
क) शहरी सहकारी बैंक	1,813	3.4
ख) ग्रामीण सहकारी बैंक	1,07,497	9.5
i) अल्पावधि	1,06,781	8.5
• राज्य सहकारी बैंक	31	1.8
• जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक	369	3.3
• प्राथमिक कृषि सहकारी समितियां	97,224	3.3
ii) दीर्घावधि	716	1.0
• राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक	20	0.5
• प्राथमिक सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक	696	0.5
ग. गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं	**591**	**12.0**
क) वित्तीय संस्थाएं**	6	3.5
ख) गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां#	577	8.2
ग) प्राथमिक व्यापारी	8	0.3

* : बीमा विनियामक एवं विकास प्राधिकरण (आइआरडीए) द्वारा विनियमित बीमा कंपनियां एवं भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) द्वारा विनियमित म्युचुअल फंड इसमें शामिल नहीं है।

**: छः वित्तीय संस्थाएं नामतः आइएफसीआइ लि., टीएफसीआइ लि., नाबार्ड, एनएचबी, सिडबी एवं एक्ज़िम बैंक से संबंधित आंकड़े। दिनांक 31 मार्च 2007 की स्थिति के अनुसार आइआइबीआइ लि. स्वेच्छा से समापन के अधीन था।

\# : ये आंकड़े अवशिष्ट गैर बैंकिंग कंपनियों, जमा लेनेवाली एनबीएफसी (एनबीएफसी-डी) एवं जमा न लेनेवाली प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण एनबीएफसी (एनबीएफसी -एनडी-एसआइ) से संबंधित हैं।

निभाता है। मार्च 2007 के अंत में बैंकिंग तथा बीमा का कुल मिलाकर जीडीपी में 6.7 प्रतिशत हिस्सा था। यद्यपि जीडीपी के प्रति बैंकिंग क्षेत्र के अंशदान के बारे में अलग से आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, मार्च 2007 के अंत में बैंकिंग और बीमा क्षेत्रों की संयुक्त आस्तियों में इसके अंश (83.1 प्रतिशत) से जीडीपी में इसके अंशदान के बारे में एक राय बनायी जा सकती है। मार्च 2005 के अंत में बैंकिंग क्षेत्र में उत्पन्न रोजगार संगठित क्षेत्र के रोजगार का 3.2 प्रतिशत था।

1.20 1990 के दशक के प्रारंभ से वित्तीय क्षेत्र में सुधार के फलस्वरूप भारत में बैंकिंग प्रणाली में उल्लेखनीय रूपांतरण हुआ है। बैंकिंग क्षेत्र के

सुधारों में परिचालनात्मक दक्षता बढ़ाने, विवेकपूर्ण और पर्यवेक्षणात्मक मानदंड सुदृढ़ करने, बाह्य अवरोधों को हटाने, प्रतिस्पर्धी माहौल बनाने तथा प्रौद्योगिकीय एवं संस्थागत बुनियादी सुविधा विकसित करने पर जोर दिया गया है। सुधार संबंधी उपायों का प्रभाव लाभप्रदता में सुधार, वित्तीय स्वास्थ्य, सुदृढ़ता और बैंकिंग क्षेत्र की समग्र दक्षता में प्रदर्शित होता है। जोखिम भारित आस्तियां बढ़ने के बावजूद बैंक अपना पूंजी पर्याप्तता अनुपात बनाए रखने अथवा बढ़ाने में समर्थ हुए हैं। बैंकों का ऋण संविभाग, जिसमें 1998-2003 के दौरान अर्थव्यवस्था में समग्र मंदी के साथ बैंकों के स्तर पर जोखिम से कुछ बचाव के कारण गिरावट आई थी, हाल के वर्षों में तेजी से बढ़ गया। कृषि और एसएमई क्षेत्रों को ऋण के प्रवाह में वृद्धि एक उल्लेखनीय विशेषता है। बैंकों के खुदरा ऋण संविभाग में भी तेजी से वृद्धि हुई है। वित्तीय समावेशन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। 1991-2002 के दौरान घरेलू क्षेत्र को बैंकों द्वारा दिया गया ऋण 1981-1991 के दौरान की गति से मोटे तौर पर बढ़ना जारी रहा। तथापि 2002 के बाद रिजर्व बैंक द्वारा शुरू किए गए कई उपायों के फलस्वरूप जमा और ऋण के प्रसार में उल्लेखनीय सुधार हुआ।

1.21 निजी क्षेत्र के नए बैंकों का प्रवेश होने तथा विदेशी बैंकों की मौजूदगी बढ़ने के साथ भारतीय बैंकिंग क्षेत्र अधिक प्रतिस्पर्धी हो गया है। सरकारी क्षेत्र के बैंक भी बाजार से पूंजी जुटा रहे हैं तथा उन पर बाजार अनुशासन लागू है। बैंकिंग क्षेत्र की दक्षता, उत्पादकता और सुदृढ़ता में सुधार के बाद के चरण में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। बैंकों ने गैर-परंपरागत कार्यकलापों में अधिकाधिक विशाखीकरण किया है, जिसके फलस्वरूप कई वित्तीय संगुटों का उदय हुआ है। इससे कई विनियामक और पर्यवेक्षणात्मक चुनौतियां सामने आई हैं। इस प्रकार आय बढ़ाने के लिए इस अविनियमन ने बैंकों के लिए नए क्षेत्र के द्वार खोल दिए हैं, साथ ही इससे अधिक जोखिम भी आई है। बैंकिंग क्षेत्र में नए बैंकों, नई लिखतों, नए गवाक्षों, नए अवसरों का उदय हुआ है और इन्हीं के साथ नई चुनौतियां भी सामने आई हैं।

भारत में बैंकिंग की गतिविधि संबंधी मुद्दे

1.22 भारतीय बैंकिंग प्रणाली वर्तमान में निर्णायक दौर से गुजर रही है। यद्यपि बैंकिंग क्षेत्र सुदृढ़, प्रतिस्पर्धी,गतिशील और लचीला हुआ है, साथ ही इसने देशी और वैश्विक दोनों स्तरों पर समष्टि आर्थिक एवं वित्तीय क्षेत्र की गतिविधियों के फलस्वरूप अनेक नई चुनौतियों का सामना किया है। भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के सामने मौजूद प्रमुख मुद्दे/चुनौतियां इस प्रकार हैं : (i) वर्तमान आर्थिक वृद्धि की गति को बनाए रखने तथा उसे बढ़ाने के लिए संसाधन संग्रहण; (ii) विदेश में परिचालनात्मक मौजूदगी वाले भारतीय बैंकों तथा भारत स्थित विदेशी बैंकों द्वारा 31 मार्च 2008 से तथा अन्य अनुसूचित वाणिज्य बैंकों द्वारा 31 मार्च 2009 तक बासल II मानदंडों का कार्यान्वयन; (iii) भारत में विदेशी बैंकों की मौजूदगी बढ़ाने की अनुमति संबंधी मुद्दे क्योंकि विदेशी बैंकों के लिए रोडमैप की समीक्षा अप्रैल 2009 में की जानी है; (iv) पूर्णतर पूंजीखाता परिवर्तनीयता के प्रति क्रमिक रूप से आगे बढ़ना, जिससे बैंकिंग प्रणाली के सामने जोखिम बढ़ेगी तथा जिसके लिए कुछ विनियामक एवं पर्यवेक्षणात्मक पहलुओं सहित बैंकिंग में कतिपय मुद्दों का समाधान किया जाना अपेक्षित होगा; (v) वित्तीय संगुटों का उदय, जिसने उपयुक्त विनियामक संरचना/व्यवस्था का मुद्दा उठाया है; (vi) जटिल वित्तीय प्रॉडक्टों का उदय, जिससे कई पर्यवेक्षणात्मक चुनौतियां उत्पन्न हो गई हैं; तथा (vii) वित्तीय सेवाएं बड़ी संख्या में ऐसे लोगों तक पहुंचाने की आवश्यकता, जो बैंकिंग प्रणाली के बाहर हैं।

बैंकिंग और आर्थिक वृद्धि

1.23 किसी भी अर्थव्यवस्था में बैंकिंग प्रणाली का मुख्य कार्य संसाधन जुटाना तथा उन्हें उत्पादक प्रयोजनों में लगाना है। बैंकिंग प्रणाली जितनी विकसित होगी, वह इस प्रकार की भूमिका उतने ही बेहतर तरीके से निभा सकेगी। पिछले पांच वर्षों (2003-04 से 2007-08) के दौरान 8.8 प्रतिशत की औसत वृद्धि दर के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था उच्च वृद्धि क्षेत्र में पहुंच गई है। यह निवेश दर के 2001-02 के 22.8 प्रतिशत से उल्लेखनीय रूप से बढ़कर 2006-07 में 35.9 प्रतिशत तक पहुंचने द्वारा सुकर हुआ है। भारत में बचत की दर भी 2001-02 के 23.5 प्रतिशत से सुधरकर 2006-07 में 34.8 प्रतिशत पर पहुंच गई है ताकि उच्च वृद्धि की निवेश आवश्यकताओं का समर्थन किया जा सके। उसी अवधि में अनुसूचित वाणिज्य बैंकों द्वारा दिए गए ऋणों और अग्रिमों में तीन गुने की वृद्धि हुई। वृद्धि की गति को बनाए रखने के लिए बचत दर बनाए रखने और उसे बढ़ाने की भी आवश्यकता होगी जो बदले में बचतकर्ताओं एवं निवेशकर्ताओं के बीच दक्ष मध्यस्थता पर अत्यधिक निर्भर होगी। इस संदर्भ में, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में यह विचार व्यक्त किया गया, ''साध्यता को प्रभावित करने वाली एक प्रमुख विशिष्टता वित्तीय प्रणाली तथा बचतों को संभाव्य उपयोगकर्ताओं के बीच ले जाने की उसकी योग्यता है। त्वरित वृद्धि में निवेश का विस्तार, वर्तमान उद्यमों का आर्थिक पुनर्विन्यास शामिल होता है क्योंकि वे स्वयं प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार होते हैं तथा नए उद्यमियों को अवसरों के अनुकूल कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह सब तभी संभव होगा यदि वित्तीय प्रणालियां हो रहे संरचनात्मक परिवर्तनों का वित्तपोषण कर सकें।''

1.24 बचत और निवेश दरों का वांछित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए बड़े पैमाने पर घरेलू तौर पर संसाधन जुटाने की आवश्यकता होगी।

भारत के पास उचित रूप से ऊंची तथा बढ़ती हुई बचत दर है। तथापि, बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था की वित्तीय अपेक्षाएं पूरी करने के लिए वित्तीय बचतें महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि, कुछ वर्षों में वित्तीय बचतों में वृद्धि हुई है, भौतिक बचत भी वित्तीय बचतों के अनुरूप बढ़ी है। वित्तीय बचतों के पक्ष में अनुत्पादक भौतिक बचतों की स्थानापन्नता निवेश के लिए बड़े संसाधन उत्पन्न कर सकती है। साथ ही ग्रामीण और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में काफी मात्रा में अदोहित बचत संभाव्यता है। तथापि, अनुत्पादक भौतिक बचतों को वित्तीय बचतों में रूपांतरित करने तथा अब तक अदोहित ग्रामीण एवं अर्द्धशहरी क्षेत्रों की बचतों का संग्रहण करने के लिए अभिनव और कम खर्चीले उत्पादों की जरूरत होगी। बैंकों की पहुंच तथा उनकी जमाराशियों के विशेष लक्षण, अर्थात सुरक्षा और तरलता, को देखते हुए वे वित्तीय प्रणाली के अन्य घटकों की तुलना में यह भूमिका निभाने की बेहतर स्थिति में हैं।

बासेल II

1.25 बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ करने की दृष्टि से भारत विनियमन और पर्यवेक्षण के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं को अपना रहा है। 1988 के बासेल समझौते के अनुसरण में, जोखिम भारित आस्तियों के प्रति पूंजी अनुपात (सीआरएआर), जिसने तुलनपत्र और तुलनपत्र बाह्य दोनों तरह के कारोबार में शामिल जोखिम के तत्व को हिसाब में लिया, बैंकिंग प्रणाली की सुदृढ़ता के भलीभांति माने गए और वैश्विक रूप से स्वीकृत उपाय के रूप में उभरा। तदनुसार बैंकिंग क्षेत्र सुधार के अंग के रूप में भारत ने चरणबद्ध तरीके से बासेल मानदंडों को अपनाया। वस्तुतः भारत ने एक कदम आगे बढ़कर 8 प्रतिशत के अंतरराष्ट्रीय मानदंड के विरुद्ध 9 प्रतिशत पर सीआरएआर निर्धारित किया। इसके अलावा, भारत ने मोटे तौर पर बासेल मानदंडों में 1996 में हुए संशोधन के अनुरूप जून 2004 में बाजार जोखिम के लिए पूंजी प्रभार भी निर्धारित किया।

1.26 तथापि, पिछले वर्षों में बासेल I मानदंडों की कई सीमाएं सामने आई हैं। बड़ी और जटिल बैंकिंग संस्थाओं के उदय तथा जोखिम प्रबंधन में संस्थाओं के बढ़ते हुए परिष्करण को देखते हुए बासेल I के तहत जोखिम भारों की स्ट्रेट जैकेट प्रणाली कम सार्थक हो गई। इसके अलावा ऋण जोखिम की माप में हुए सुधारों ने उन महत्वपूर्ण नियमों के अंतरपणन के लिए प्रतिभूतिकरण तथा क्रेडिट डेरिवेटिव के बढ़े हुए उपयोग को सुकर बनाया। अतः बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति (बीसीबीएस) ने नया पूंजीगत ढांचा (बासेल II ढांचा) शुरू किया, जिसमें न सिर्फ ऋण और बाजार जोखिमों के लिए अपितु परिचालनात्मक जोखिम के लिए भी बैंकों के लिए अधिक जोखिम संवेदनशील पूंजीगत अपेक्षा का प्रावधान है। पूंजीगत अपेक्षाओं की अनुपूर्ति पर्यवेक्षणात्मक समीक्षा और बाजार अनुशासन द्वारा की जाती है। भारत में बासेल II ढांचा मार्च 2009 के अंत से पूर्णतः परिचालित हो जाएगा, जबकि देशी और विदेशी बैंकों का एक भाग पहले ही बासेल II का अनुपालन कर रहा है। बासेल II का कार्यान्वयन बैंकों तथा रिज़र्व बैंक के लिए कई चुनौतियां प्रस्तुत करता है। बैंकों के स्तर पर कार्यान्वयन के लिए अन्य बातों के साथ-साथ शाखा अंतर-संबद्धता को अपग्रेड करना अपेक्षित होगा जिसमें खर्चा आएगा तथा सुरक्षा संबंधी कुछ मुद्दे भी उठेंगे। बासेल II का कार्यान्वयन मानव संसाधन कौशल तथा डेटाबेस प्रबंधन के विकास संबंधी कई मुद्दे भी उठाता है। बैंकों को पूंजी जुटाने के विभिन्न विकल्पों की भी खोज करनी होगी। प्रत्येक राष्ट्रीय पर्यवेक्षक से आशा है कि वह समयसारणी तथा कार्यान्वयन के लिए दृष्टिकोण तैयार करते समय अपनी देशी बैंकिंग प्रणाली के संबंध में संशोधित ढांचे के लाभ पर सतर्कतापूर्वक विचार करे। रिज़र्व बैंक ने वाणिज्यिक बैंकों के लिए बासेल II ढांचे के कार्यान्वयन के लिए समयसारणी तैयार की है। बासेल II ढांचे में तीन प्रमुख जोखिमों के लिए पूंजीगत अपेक्षाओं की गणना करने हेतु कई विकल्प उपलब्ध है। जहां वर्तमान में बैंक सरल दृष्टिकोण अपनाएंगे, यह संभव है कि बाद में कुछ बैंक रिज़र्व बैंक के पर्यवेक्षण के तहत अग्रिम दृष्टिकोणों की ओर अग्रसर हों। फलस्वरूप परिमाणात्मक तकनीकों से सुसज्जित मानव संसाधन की गुणवत्ता में क्रमिक सुधार की आवश्यकता भविष्य में पड़ेगी। ढांचे के स्तंभ II के तहत, बैंकों द्वारा अधिक परिष्कृत प्रॉडक्ट शुरू करने पर रिज़र्व बैंक द्वारा उसकी पर्यवेक्षणात्मक प्रक्रियाओं की समीक्षा और उसमें संशोधन किया जाना अपेक्षित होगा। वाणिज्यिक बैंकों के अलावा, देश में शहरी सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों जैसी कई अन्य प्रकार की बैंकिंग संस्थाएं भी कार्यरत हैं। इस बात की सतर्कतापूर्वक जांच करने की जरूरत है कि पूंजी पर्याप्तता संबंधी मानदंडों के बारे में ऐसी संस्थाओं पर किस प्रकार का विनियामक व्यवहार लागू किए जाने की जरूरत है।

विदेशी बैंकों की भूमिका

1.27 अब यह व्यापक तौर पर माना जाने लगा है कि वित्तीय संस्थाओं के दक्षतापूर्ण परिचालन के लिए प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति बनाए रखना जरूरी है। बैंकिंग में आनुभविक तथा सैद्धांतिक साहित्य भी यह सुझाते हैं कि एक प्रतिस्पर्धी बैंकिंग प्रणाली अधिक दक्ष होती है। अतः सरकार और रिज़र्व बैंक का यह प्रयास है कि निजी क्षेत्र के नए बैंकों के प्रवेश, विदेशी बैंकों की उपस्थिति में वृद्धि तथा सरकारी क्षेत्र के बैंकों को परिचालनात्मक लचीलेपन के प्रावधान के माध्यम से प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया जाए। स्वामित्व के विशाखीकरण के लिए सरकारी क्षेत्र के बैंकों को अनुमति दी गई कि वे सरकारी शेयरधारिता 51 प्रतिशत पर बनाए रखने की शर्त पर पूंजी

बाजारों से निधियां जुटाएं। प्रतिस्पर्धी प्रक्रिया को अवरुद्ध करने वाले विभिन्न अन्य प्रतिबंधों को भी कमोबेश निकाल दिया गया है।

1.28 वित्तीय प्रणाली के अंतरराष्ट्रीय समन्वयन में प्रमुख वाहन के रूप में विदेशी बैंकों के उदय को स्वीकार करते हुए, हाल के वर्षों में विभिन्न देशों में नीतिनिर्माताओं की कार्यसूची में विदेशी बैंकों के प्रवेश के प्रति उदार नीति एक उच्च प्राथमिकता बन गई है। विदेशी वित्तीय संस्थाओं को देशी बाजार में प्रवेश की अनुमति देकर वित्तीय सेवाओं को उदार बनाने से प्रतिस्पर्धा में सुधार होगा तथा इस प्रकार बेहतर और सस्ती वित्तीय मध्यस्थता संभव होगी। प्रौद्योगिकी तथा कौशल प्रबंधन के मिश्रण के जरिए प्रतिस्पर्धा और दक्षता बढ़ाने के अलावा, विदेशी बैंकों के प्रवेश के कुछ अन्य लाभों में उत्कृष्ट जोखिम प्रबंधन प्रथाओं की शुरुआत तथा बड़ा पूंजी आधार शामिल हैं, जो मेजबान देश के व्यवसाय चक्र के प्रति भी कम संवेदनशील है। तथापि, विभिन्न देशों के साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि विदेशी बैंकों के लाभ और उनके खर्चे स्पष्ट नहीं हैं तथा वे वित्तीय क्षेत्र के सुधार के क्रम और संबंधित देश में विकास के स्तर पर निर्भर रहते हुए संदर्भाधीन हैं। कई आनुभविक अध्ययन यह सुझाते हैं कि बैंकिंग तनाव की अवधि में विदेशी बैंक एक स्थिरकारी भूमिका निभाते हैं (लेवाइन, 1996; मार्टिनेज पेरिआ आदि,2002; डेट्रागिआचे तथा गुप्ता, 2004; और गोल्डबर्ग आदि, 2000)। इसके अलावा विदेशी बैंकों के प्रवेश की लागत और उसके लाभ काफी सीमा तक विदेशी बैंकों की प्रवेश की विधि द्वारा मार्गदर्शित होते हैं। वित्तीय सेवा उद्योग का उदारीकरण भी कुछ चिंताओं को जन्म देता है। उदाहरण के लिए विदेशी बैंकों की मौजूदगी बढ़ने की संभाव्यता किसी देश को बाह्य आघातों के प्रति एक्सपोज कर सकती है। देशी वित्तीय प्रणाली को बिना किसी प्रतिबंध के विदेशी वित्तीय सेवा प्रदाताओं के लिए खोलने से भी देशी वित्तीय संस्थाओं का विदेशी बैंकों द्वारा अधिग्रहण किए जाने की संभावना उत्पन्न हो जाती है।

1.29 भारत ने सुधारोत्तर अवधि में विदेशी बैंकों के प्रवेश को भी उदार बनाया। फरवरी 2005 में रिज़र्व बैंक द्वारा तैयार किये गए रोडमैप में, देशी बैंकिंग क्षेत्र को विदेशी बैंकों के लिए खोलने की परिकल्पना दो चरणों में की गई। पहले चरण में यह परिकल्पना की गई कि पहली बार भारत में उपस्थिति दर्ज कराने के इच्छुक विदेशी बैंक या तो शाखा की उपस्थिति के माध्यम से परिचालन करना चुनें अथवा वे एक-विधि उपस्थिति मानदंड का अनुसरण करते हुए 100 प्रतिशत पूर्ण रूप से स्वाधिकृत सहायक संस्था (डब्ल्यूओएस) की स्थापना करें। दूसरे चरण (अप्रैल 2009 के बाद) में, विदेशी बैंकों की नीति की समीक्षा की जानी है। उस चरण में विदेशी बैंकों की बढ़ी हुई मौजूदगी से जुड़े विभिन्न मुद्दों - यथा, देशी बैंकों पर प्रभाव, उनके परिष्कृत परिचालनों तथा जटिल एवं परिष्कृत प्रॉडक्टों में उनकी सहभागिता को देखते हुए पर्यवेक्षणात्मक और विनियात्मक चुनौतियों, वित्तीय समावेशन, कृषि एवं एसएमई को ऋण, ऋण सुपुर्दगी के बारे में सार्वजनिक नीति, लागत एवं आबंटन - का लेखाजोखा करने की जरूरत होगी। गृह तथा मेजबान देशों के विनियामकों के बीच समन्वय संबंधी मुद्दे भी चुनौती उपस्थित करेंगे।

पूंजी खाता परिवर्तनीयता

1.30 अर्थव्यवस्था जैसे-जैसे वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ अधिकाधिक समन्वित होगी, वैसे-वैसे भारतीय बैंकिंग प्रणाली भी शेष विश्व के साथ क्रमिक रूप से समन्वित होती जाएगी। पूर्णतर पूंजी खाता परिवर्तनीयता पर गठित समिति (अध्यक्ष : श्री एस.एस. तारापोर), जिसने जुलाई 2006 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, ने अन्य बातों के साथ-साथ पांच वर्ष की अवधि के व्यापक टाइमफ्रेम की संस्तुति की जिसे पूर्णतर पूंजी खाता उदारीकरण के लिए तीन चरणों में कार्यान्वित किया जाना था, अर्थात 2006-07 (चरण I), 2007-08 और 2008-09 (चरण II) तथा 2009-10 और 2010-11 (चरण III)।

1.31 पूंजी खाता लेनदेनों के और अधिक उदारीकरण के फलस्वरूप यह आशा है कि देश के अंदर और बाहर पूंजी का दुतरफा व्यापक प्रवाह होगा। पूर्णतर पूंजी खाता परिवर्तनीयता के युग में, बैंकों से यह आशा की जाएगी कि वे देश के भीतर और बाहर निधियों के प्रवाह के लिए माध्यम के रूप में कार्य करते हुए अनेक मुद्राओं में लेनदेन करें, जब उन्हें निवासियों एवं अनिवासियों दोनों से जमाराशि स्वीकार करने तथा उधार जुटाने के लिए और देशी एवं विदेशी क्षेत्राधिकारों दोनों में उधार और निवेश के लिए समर्थ बनाया जाए। इसी तरह अनिवासी बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं से आशा की जाती है कि वे इसी तरह के लेनदेन करें। बैंकिंग प्रणाली के साथ संपर्क रखनेवाली वित्तेतर संस्थाएं भी विदेश में उधार लेने, देने और निवेश करने के समय अनेक मुद्राओं में लेनदेन करेंगी। इस प्रकार की सभी लेनदेन बैंकिंग प्रणाली के जोखिम को बढ़ाते हैं जो कम खुली देशी बैंकिंग प्रणाली में उतनी स्पष्ट नहीं होती है। इस प्रकार मुक्त पूंजी खाता युग में बैंकिंग प्रणाली के सामने मुद्रा जोखिम, काउंटरपार्टी क्रेडिट जोखिम, अंतरण जोखिम, विधिक जोखिम, विनियामक अंतरपणन जोखिम, डेरिवेटिव लेनदेन जोखिम और प्रतिष्ठा जोखिम के रूप में जोखिमों में वृद्धि हो जाएगी। यह बैंकिंग प्रणाली में जोखिम प्रबंधन क्षमताओं की जरूरत को रेखांकित करता है। मुक्त पूंजी युग के लिए चलनिधि प्रबंधन तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रकटीकरण प्रथाओं में सुधार की भी अपेक्षा होगी क्योंकि उन्हें परिपक्वता बेमेलों के नियंत्रण तथा ऋण-इक्विटी मिश्रण में सुधार लाने के लिए निधीयन के स्रोतों को विशाखीकृत करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। एक उदारीकृत वातावरण में विनिमय जोखिम के प्रति बैंकों के अपने एक्सपोजर, विभिन्न देशों के क्षेत्राधिकारों में फैली

उसी प्रकार की जोखिमों का सामना करनेवाली कंपनियों के प्रति उनके एक्सपोजरों सहित, जोखिमों की बहुलता को बढ़ाएंगे जो कड़ी निगरानी एवं विवेकपूर्ण प्रबंधन के मुद्दों को प्रस्तुत करता है। पूर्णतर पूंजी खाता युग में सुदृढ़ बैंकिंग क्षेत्र भी उपयुक्त मौद्रिक नीति के कार्यान्वयन के लिए महत्वपूर्ण है।

1.32 इस प्रकार, शेष विश्व के साथ देशी अर्थव्यवस्था का समन्वयन बढ़ाने के लिए यह अपेक्षित है कि बैंकिंग क्षेत्र अलग-अलग और बढ़ी हुई जोखिमों का प्रबंधन करने के लिए उपयुक्त क्षमताएं तैयार करे। विशेष तौर पर विनिमय दर जोखिम और विभिन्न बाजारों में उसके प्रभावों का प्रसार ऐसी विशिष्ट चुनौतियां हैं जिनसे वैश्विक परिदृश्य में निपटा जाना है। इन चुनौतियों का सामना करने की असमर्थता से वित्तीय प्रणाली में अस्थिरता आ सकती है। मुक्त पूंजी लेनदेन युग में, धनशोधन की मात्रा भी वित्तीय प्रवाहों में समग्र वृद्धि के साथ बढ़ सकती है, जिसके लिए उपयुक्त नीतिगत प्रतिसाद अपेक्षित होंगे।

वित्तीय संगुट और विनियामक संरचना

1.33 परंपरागत रूप से पूरे विश्व में वित्तीय मध्यस्थकों का विनियमन संस्थागत तौर पर किया जा रहा है जिसके द्वारा व्यवसाय मिश्रण से निरपेक्ष वित्तीय संस्थाओं के विनियमन पर ध्यान दिया जाता है। हाल के वर्षों में, बैंकों तथा बैंकेतर वित्तीय मध्यस्थों के बीच अंतर अस्पष्ट हो गया है। ऐसे अनेक वित्तीय संगुटों का भी उदय हुआ है जो उसी कारपोरेट संरचना के तहत विभिन्न वित्तीय कार्यकलाप करते हैं। इन्होंने संस्था-आधारित विनियमन को चुनौती दी है क्योंकि यह विनियमन में मौजूद अंतरालों तथा अतिव्याप्ति को हिसाब में लेने में असफल है। इसके अलावा, एक समूह के रूप में वित्तीय संगुटों की जोखिम अनेक कार्यकलापों में कार्यरत उसकी संबद्ध/सहायक संस्थाओं की जोखिमों के कुल जोड़ की तुलना में उच्चतर हो सकती है। अतः कई देशों में संस्थाओं पर आधारित विनियामक संरचना नीति और सार्वजनिक बहस का एक बड़ा मुद्दा बन गई है।

1.34 वित्तीय संगुटों के परिचालनों द्वारा उठाए गए मुद्दों का समाधान पाने के लिए कुछ देशों ने बड़े/एकल विनियामक की प्रणाली का अनुसरण किया है, जो वित्तीय प्रणाली के सभी खंडों का पर्यवेक्षण करती है। कुछ अन्य देशों ने उद्देश्य-आधारित विनियमन का अनुसरण किया है जिसके तहत विनियमन उद्देश्य पर आधारित है (विवेकपूर्ण विनियमन अथवा बाजार व्यवहार)। तथापि, प्रत्येक संरचना के अपने फायदे और नुकसान हैं तथा विनियामक इस मुद्दे से भिड़ रहे हैं कि कौन-सी संरचना सर्वाधिक उपयुक्त है। वित्तीय बाजार की हाल की गतिविधियां तथा यू.के. में नॉर्दर्न रॉक, जिसकी केंद्रीय बैंक के बाहर पर्यवेक्षी संरचना थी, की चूक ने इस मुद्दे में और अधिक अनिश्चितता जोड़ दी है।

1.35 भारत में, भी विभिन्न वित्तीय सेवाएं प्रदान करनेवालों के बीच कार्यकलाप के बीच अंतर धुंधला होता जा रहा है। कुछ वित्तीय संगुटों का भी उदय हुआ है। सेबी तथा आइआरडीए जैसे अन्य विनियामकों के सहयोग से वित्तीय संगुटों के लिए निगरानी प्रक्रिया विकसित की गई है। इस संबंध में वित्तीय संगुटों की उपयुक्त संरचना काफी निकट संबद्ध मुद्दा है। भारत में वित्तीय संगुटों का स्वरूप मूल-सहायक संरचना पर आधारित है। यू.एस., जापान तथा कनाडा जैसे कुछ देशों में वित्तीय संगुटों को धारक कंपनी संरचना में संगठित किया गया है। इस संदर्भ में, रिज़र्व बैंक ने सितंबर 2007 में 'चर्चा पत्र' जारी किया, जिसमें यह सूचित किया गया कि बैंक धारक/वित्तीय धारक मॉडल अपनाने की संभावना खोजना उपयोगी होगा।

जटिल प्रॉडक्ट

1.36 हाल के वर्षों में, विकसित देशों में आस्ति-समर्थित प्रतिभूति, डेरिवेटिव, ऋण चूक स्वैप (सीडीएस) तथा संपाश्र्विकीकृत ऋण दायित्व (सीडीओ) जैसे वित्तीय प्रॉडक्ट आ गए हैं। बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के बीच ये प्रॉडक्ट अत्यधिक लोकप्रिय हो गए क्योंकि इन्होंने उन्हें अपनी जोखिम का बचाव करने तथा अपनी विनियामक एवं आर्थिक पूंजी अधिक दक्षतापूर्वक प्रबंधित करने की अनुमति दी।

1.37 यद्यपि विभिन्न संरचित प्रॉडक्टों के कारण जोखिमों का अंतरण संभव हुआ है एवं लिखतों की तरलता बढ़ी है, तथापि, यूएस सबप्राइम बंधक बाजार में हाल के उथल-पुथल तथा जटिल डेरिवेटिव से जुड़ी अन्य गतिविधियों ने इन लिखतों द्वारा प्रस्तुत जोखिमों को सामने ला दिया है। इन लिखतों के कार्यनिष्पादन संबंधी लंबे ऐतिहासिक आंकड़ों के अभाव तथा अन्य आस्तियों एवं लिखतों के साथ उनके सह-संबंधों ने उनके समग्र जोखिम-प्रतिलाभ प्रोफाइल के आकलन को कठिन बना दिया है। इसके अलावा, सबप्राइम रिहाइशी बंधक समर्थित प्रतिभूति बाजार में कई बाजार प्रतिभागी भलीभांति समुचित सावधानी बरते बिना तथा उपयुक्त जोखिम प्रबंधन संरचनाओं एवं प्रक्रियाओं की स्थापना किए बिना आगे बढ़ने के इच्छुक थे। संरचित क्रेडिट जैसी नई लिखतों की अत्यधिक अपारदर्शिता द्वारा आक्रामक जोखिम उठाने को बढ़ावा मिला। जहां अभिनव ऋण लिखतों के प्रयोग में वृद्धि एवं जोखिम विस्तार के जटिल स्तरीकरण की प्रथा ने सूचना लागत को घटा दिया, इसकी मदद से निवेशक अथवा जोखिम उठानेवाले अंतिम उधारकर्ताओं, जहां वास्तविक जोखिम थी, से क्रमिक रूप से दूर हो गए। बंधक दलालों, बंधक कंपनियों और सोसाइटियों जैसे कई मध्यस्थों द्वारा गैर अनुरूपी ऋणों सहित बंधक आस्तियों को पैकेज किए जाने तथा विशेष निवेश वाहनों (एसआइवी) और बचाव निधियों सहित विभिन्न श्रेणी के निवेशकों

को उनकी बिक्री किए जाने के साथ, संपूर्ण शृंखला में जोखिमों की पहचान और उनकी स्थिति अधिकाधिक चुनौतीपूर्ण हो गई।

1.38 भारत में भी बंधक समर्थित प्रतिभूतियों (एमबीएस) तथा आस्ति समर्थित प्रतिभूतियों (एबीएस) जैसे वित्तीय प्रॉडक्ट मौजूद हैं। प्रतिभूतिकृत प्रॉडक्टों के अलावा, भारतीय विदेशी मुद्रा तथा रुपया डेरिवेटिव बाजार भी कुछ वर्षों में उल्लेखनीय रूप से विकसित हो गए हैं। रुपया सहित विदेशी मुद्रा डेरिवेटिवों के मामले में, निवासियों की पहुंच विदेशी मुद्रा वायदा संविदाओं, विदेशी मुद्रा-रुपया स्वैप लिखतों तथा मुद्रा ऑप्शन - क्रास करेंसी एवं विदेशी मुद्रा-रुपया दोनों - रूपों में है। जैसाकि वर्ष 2008-09 के वार्षिक नीति वक्तव्य में कहा गया है, रिज़र्व बैंक ने पात्र एक्सचेंजों में करेंसी फ्यूचर्स लागू करने की घोषणा की जिसके लिए अगस्त 2008 में व्यापक ढांचे की घोषणा की गई। भविष्य में कुछ और अभिनव एवं जटिल प्रॉडक्ट आ सकते हैं। इन प्रॉडक्टों से कई विनियामक एवं पर्यवेक्षणात्मक चुनौतियां सामने आ सकती हैं।

वित्तीय समावेशन

1.39 कुछ वर्षों में बैंकिंग के तीव्र प्रसार के बावजूद प्रमुख तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में रहनेवाली आबादी का एक बड़ा भाग औपचारिक वित्तीय प्रणाली से दूर है।वर्तमान में एक स्पष्ट धारणा है कि बड़ी संख्या में लोग, संभाव्य उद्यमी, छोटे उद्यम और अन्य, जिन्हें वित्तीय क्षेत्र के बाहर रखा गया है, हासिए पर चले गए हैं और उन्हें बढ़ने और संपन्न होने का अवसर नहीं दिया गया है (मोहन, 2006)। अतः संगठित वित्तीय प्रणाली के प्रति आबादी के इस बड़े भाग को पहुंचाना रिज़र्व बैंक की कार्यसूची में काफी ऊपर है। तथापि, मुख्य मुद्दा यह है कि संस्थागत स्रोतों का उपयोग किस प्रकार किया जाए ताकि ऋण प्रदान करने के संबंध में व्यापक लोगों को समाविष्ट किया जा सके। कम आय एवं अल्प बचत वाले बड़ी संख्या में परिवारों को भी जुटाने की जरूरत है। ग्रामीण क्षेत्रों के अलावा शहरी क्षेत्रों में भी बड़ी मात्रा में वित्तीय निष्कासन की स्थिति है। वित्तीय निष्कासन की लागत समाज एवं व्यक्ति के लिए काफी अधिक मानी जाती है, विशेष तौर पर वित्तीय बाध्यताओं के कारण पूरी संभाव्यता के दोहन में असमर्थता के रूप में। तथापि, ऐसी कई चुनौतियां हैं जिनके लिए बैंकों, रिज़र्व बैंक तथा सरकार द्वारा समंजित प्रयास कर आम जनता को वित्तीय सेवाओं की सुविधाजनक एवं कम खर्चीली सुपुर्दगी सुनिश्चित की जानी है। विशेष रूप में वित्तीय समावेशन को एक अर्थक्षम मॉडल बनाने हेतु जोखिम आकलन में नवीन प्रयोग करने, लेनदेन लागत घटाने, नए ऋण सुपुर्दगी चैनल शुरू करने तथा सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करने की चुनौती है।

रिपोर्ट की संरचना

1.40 बैंकिंग क्षेत्र के सामने मौजूद विभिन्न मुद्दों/चुनौतियों की समझ बढ़ाने के लिए तथा सुदृढ़ आधार पर बैंकिंग क्षेत्र की वृद्धि सुनिश्चित करने हेतु निपटाए जानेवाले महत्वपूर्ण मुद्दों की पहचान करने के लिए, 2006-08 की रिपोर्ट की विषयवस्तु के लिए ''**भारत में बैंकिंग क्षेत्र - उभरते मुद्दे और चुनौतियां**'' को चुना गया है। इस रिपोर्ट में भारत में बैंकिंग के विभिन्न पहलुओं यथा संसाधन संग्रहण, पूंजी और जोखिम प्रबंधन; बैंकों के उधार और निवेश परिचालन; वित्तीय समावेशन; दक्षता, लाभप्रदता और सुदृढ़ता; प्रतिस्पर्धा और समेकन; तथा विनियामक और पर्यवेक्षणात्मक चुनौतियों का गंभीर विश्लेषण किया गया है। इन पहलुओं का विश्लेषण अंतर-कालिक और विभिन्न देशों के आंकड़ों/जानकारियों का उपयोग कर वर्तमान प्रमुख मुद्दों और चुनौतियों पर प्रकाश डालते हुए किया गया है। बैंकिंग के उक्त प्रत्येक पहलू के लिए भविष्य में उपलब्ध विकल्प की रूपरेखा प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया गया है। रिपोर्ट में विभिन्न मुद्दों की अत्यधिक जांच करने तथा भारत की वृद्धि की वर्तमान गति के समर्थन/त्वरण तथा वित्तीय प्रणाली की स्थिरता बढ़ाने के लिए बैंकिंग क्षेत्र की वृद्धि सुनिश्चित करने हेतु भविष्य में किए जानेवाले उपायों पर बल दिया गया है। इस रिपोर्ट में सुझाए गए विभिन्न उपाय सिर्फ वह व्यापक दिशा निर्धारित करते हैं जिसमें भविष्य में बैंकिंग क्षेत्र में सुधार किया जाएगा। विश्वसनीय तौर पर सुचारु तरीके से आगे बढ़ने को ध्यान में रखते हुए किए जानेवाले उपायों की गति और उनके अनुक्रमण पर सोच-विचार किए जाने की जरूरत होगी।

1.41 इस रिपोर्ट की विषयवस्तु पिछले तीन वर्षों की रिपोर्टों की विषयवस्तुओं अर्थात 'भारत में मौद्रिक नीति का विकास और उसकी चुनौतियां' (2003-04), 'भारत में केंद्रीय बैंकिंग का विकास' (2004-05) तथा 'वित्तीय बाजारों का विकास तथा केंद्रीय बैंक की भूमिका' (2005-06) का पूरक है। वित्तीय बाजारों के विकास के महत्व को ध्यान में रखते हुए, 2005-06 की रिपोर्ट में उन्हें पूर्णतः विकसित करने के लिए निपटाए जानेवाले प्रमुख मुद्दों की पहचान करने हेतु उनके विभिन्न खंडों पर गंभीर विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार वर्तमान रिपोर्ट की विषयवस्तु एक ऐसी वित्तीय प्रणाली विकसित करने के उद्देश्य के अनुरूप है जो आगे आनेवाली चुनौतियों को कारगर तरीके से पूरा करने के लिए अच्छी तरह विशाखीकृत तथा सुसज्जित हो। कुल मिलाकर इन चार रिपोर्टों में रिज़र्व बैंक के उत्तरदायित्व के प्रमुख क्षेत्रों के लिए चिंतन के विकास और भावी योजना को शामिल किया गया है।

1.42 इस अध्याय सहित इस रिपोर्ट में ग्यारह अध्याय हैं। मूल विषयवस्तु आधारित चर्चा की प्रस्तावना के रूप में 'हाल की आर्थिक

गतिविधियां' नामक रिपोर्ट के दूसरे अध्याय में 2007-08 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की समष्टि आर्थिक गतिविधियों का विश्लेषणात्मक लेखा प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा 2008-09 के लिए नवीनतम समष्टि आर्थिक गतिविधियां, जहां भी आंकड़े उपलब्ध हैं, भी शामिल की गई हैं। इस अध्याय में छह बड़े खंड हैं, यथा, वास्तविक क्षेत्र, राजकोषीय स्थिति, मौद्रिक और ऋण स्थिति, वित्तीय बाजार, बैंक और वित्तीय संस्थाएं तथा बाह्य क्षेत्र ।

1.43 'भारत में बैंकिंग का विकास' नामक तीसरे अध्याय में भारत में बैंकिंग क्षेत्र का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि आजादी के बाद के इतिहास पर ध्यान केंद्रित किया गया है, इसकी शुरुआत आरंभिक वर्षों की बैंकिंग की रूपरेखा प्रस्तुत कर की गई है। इस अध्याय में इतिहास का उद्‌घाटन करते हुए कहानी का वर्णन किया गया है तथा तीन अवधियों अर्थात 1947 से1967; 1967 से 1991 तथा 1991 के बाद की अवधियों के तहत बैंकिंग क्षेत्र की प्रमुख गतिविधियों पर मोटे तौर पर चर्चा की गई है।

1.44 'संसाधन संग्रहण प्रबंधन' नामक चौथे अध्याय में भारत में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा संसाधन संग्रहण की विभिन्न पहलुओं की चर्चा की गई है तथा इसमें संसाधन संग्रहण बनाए रखने में उनके सामने आनेवाली चुनौतियों की पहचान की गई है। बैंकों की मध्यवर्ती भूमिका पर सैद्धांतिक समर्थन देने के अलावा, इस अध्याय में संसाधन जुटाने में वित्तीय मध्यवर्तियों की भूमिका की जांच की गई है जैसा कि भारतीय अर्थव्यवस्था के निधि प्रवाह में दिखाई देता है। इस अध्याय में जमा संग्रहण प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं पर बल दिया गया है ताकि अंतर्निहित चुनौतियों को समझा जा सके।बैंकों की समग्र देयता संरचना में जमाराशियों के महत्व पर भी चर्चा की गई है। विभिन्न देशों के अनुभवों के आलोक में, इस अध्याय में संसाधन संग्रहण में बैंकों के समक्ष मौजूद उभरते मुद्दों और चुनौतियों की पहचान की गई है तथा उन्हें कारगर तौर पर पूरा करने के लिए सुझाव दिए गए हैं।

1.45 'पूंजी तथा जोखिम प्रबंधन' नामक पांचवें अध्याय में विशेष तौर पर बासेल II ढांचे के कार्यान्वयन के संदर्भ में भारत में बैंकों के समक्ष जोखिम एवं पूंजी प्रबंधन में उभरते हुए मुद्दों की चर्चा की गई है। इस अध्याय की शुरुआत पूंजी की माप एवं पूंजी मानकों के अंतरराष्ट्रीय अभिसरण के साथ की गई है तथा इसमें बासेल II ढांचे के कार्यान्वयन संबंधी विभिन्न मुद्दों, उसके लाभ, उसकी सीमाओं, उसके संभावित प्रभाव तथा प्रमुख देशों में उसके कार्यान्वयन की प्रगति, का वर्णन किया गया है। भारतीय संदर्भ में बासेल II के कार्यान्वयन में की गई प्रगति के साथ पूंजी एवं जोखिम प्रबंधन के क्षेत्रों की नीतिगत गतिविधियों पर ब्यौरेवार चर्चा की गई है।भारतीय संदर्भ में जोखिम प्रबंधन प्रथाओं, आस्ति देयता प्रबंधन तथा कारपोरेट अभिशासन पर भी चर्चा की गई है। सुधारोत्तर अवधि में बैंकों द्वारा पूंजी प्रबंधन का विश्लेषण करने के बाद, इस अध्याय में सरकारी क्षेत्र के बैंकों पर विशेष ध्यान देते हुए अगले पांच वर्षों (2007-08 से 2011-12) में से प्रत्येक में पूंजी संबंधी जरूरतों का आकलन किया गया है। इस अध्याय में भविष्य की चुनौतियां तथा सुसंगत मुद्दे भी ब्यौरेवार दिए गए हैं।

1.46 'बैंकों के उधार और निवेश परिचालन' नामक छठे अध्याय में भारत में वाणिज्य बैंकों के उधार और निवेश संबंधी विभिन्न परिचालनों पर प्राथमिक तौर पर चर्चा की गई है। बैंक उधार के सैद्धांतिक समर्थन की संक्षिप्त रूपरेखा के बाद, इस अध्याय में 1990 के दशक के प्रारंभ में शुरू हुई अवधि पर विशेष ध्यान देते हुए बैंकों के उधार परिचालनों की प्रवृत्तियों का ब्यौरेवार विश्लेषण किया गया है। विभिन्न देशों के अनुभवों की पृष्ठभूमि में, इस अध्याय में कृषि, लघु और मझौले उद्यम तथा मूलभूत संरचना जैसे कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में बैंकों द्वारा उधार दिए जाने संबंधी मुद्दों और बाध्यताओं की चर्चा की गई है। बैंकों के निवेश परिचालनों के भी ब्यौरे दिए गए हैं। बैंकों द्वारा उधार देने में अपनाए जानेवाले देशी और अंतरराष्ट्रीय स्वरूप के विश्लेषण के आधार पर इस अध्याय में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को ऋण के प्रवाह में सुधार लाने हेतु कुछ सुझाव दिए गए हैं।

1.47 'वित्तीय समावेशन' संबंधी सातवें अध्याय में सैद्धांतिक गतिविधियों, देश के अनुभवों तथा आनुभविक विश्लेषण के आधार पर भारत में वित्तीय समावेशन/निष्कासन संबंधी प्रमुख मुद्दों की जांच की गई है। संकल्पनात्मक ढांचे, माप संबंधी मुद्दों तथा स्वरूप, वित्तीय निष्कासन के कारणों एवं परिणामों पर चर्चा करने के बाद, इस अध्याय में भारत में वित्तीय समावेशन के नीतिगत पहलों का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में भारत में वित्तीय समावेशन/निष्कासन के स्वरूप और मात्रा के निर्धारण पर ध्यान केंद्रित किया गया है। वित्तीय समावेशन के परिचालन लागत तथा प्रौद्योगिकी की भूमिका संबंधी मुद्दों का भी उल्लेख किया गया है। भारतीय संदर्भ में देश के अनुभवों को तथा आनुभविक विश्लेषण के आधार पर इस अध्याय में भारत में वित्तीय समावेशन के संवर्धन के लिए भावी उपाय के तौर पर कई सुझाव दिए गए हैं।

1.48 'प्रतिस्पर्धा और समेकन' नामक आठवें अध्याय में भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में समेकन और प्रतिस्पर्धा के विभिन्न पक्षों के साथ समेकन और प्रतिस्पर्धा के बारे में सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों और देश के अनुभवों पर चर्चा की गई है। इस अध्याय में समेकन की प्रक्रिया की मात्रा और स्वरूप की जांच तथा बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा पर उसके प्रभाव और भारतीय संदर्भ में विलीन संस्थाओं की दक्षता पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इस

अध्याय में बाजार संरचना पर समेकन के प्रभाव की भी जांच की गई है। समेकन प्रक्रिया की भविष्य की कार्रवाई, सरकारी क्षेत्र के बैंकों की भूमिका, विदेशी बैंकों की मौजूदगी में वृद्धि तथा बैंकिंग एवं वाणिज्य के संमिश्रण संबंधी मुद्दों का भी विश्लेषण किया गया है। समेकन की प्रक्रिया सुदृढ़ किए जाने की स्थिति में भी भारत में बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धी स्थितियां बनाए रखना सुनिश्चित करने की दृष्टि से इस अध्याय में कई सुझाव भी दिए गए हैं।

1.49 'भारत में बैंकिंग क्षेत्र की उत्पादकता, दक्षता और सुदृढ़ता' नामक नौवें अध्याय में दक्षता एवं उत्पादकता की माप संबंधी संकल्पनात्मक मुद्दों पर चर्चा करने के बाद समग्र बैंकिंग क्षेत्र तथा विभिन्न बैंक समूहों की उत्पादकता एवं दक्षता का आकलन लेखांकन उपायों अथवा वित्तीय अनुपातों के आधार पर किया गया है। जहां कहीं संभव हुआ, अन्य देशों के साथ तुलना भी की गई है। बैंकों की आय के मुख्य स्रोत निवल ब्याज मार्जिन (एनआइएम) को प्रभावित करनेवाले कारकों का विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय में आर्थिक उपायों के रूप में भारत में बैंकिंग क्षेत्र की उत्पादकता और दक्षता की माप भी की गई है। एक ओर दक्षता का संबंध तथा दूसरी ओर स्वामित्व, आकार और विशाखीकरण का मूल्यांकन भी किया गया है। इस अध्याय में भारत में जोखिम भारित आस्तियों के प्रति पूंजी अनुपात (सीआरएआर) के रूप में बैंकिंग क्षेत्र की सुदृढ़ता के आकलन के पूर्व दक्षता एवं सुदृढ़ता के बीच संबंध भी स्थापित किया गया है। भावी उपाय के रूप में इस अध्याय में बैंकिंग क्षेत्र की दक्षता, उत्पादकता और सुदृढ़ता में और सुधार लाने के लिए कई सुझाव दिए गए हैं।

1.50 'बैंकिंग में विनियामक और पर्यवेक्षणात्मक चुनौतियां' नामक दसवें अध्याय में बैंकों के विनियमन संबंधी सिद्धांत प्रस्तुत करने के बाद वैश्विक संदर्भ में बैंकों संबंधी विभिन्न विनियामक और पर्यवेक्षणात्मक मुद्दों पर हाल में किए जा रहे सोच-विचार की चर्चा की गई है। भारत में वर्तमान विनियामक और पर्यवेक्षणात्मक ढांचे का निर्धारण करने के बाद, इस अध्याय में भारतीय संदर्भ में उत्पन्न विनियामक और पर्यवेक्षणात्मक मुद्दों/चुनौतियों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। वैश्विक और देशी गतिविधियों के संदर्भ में, भारत में विनियमन और पर्यवेक्षण को और सुदृढ़ करने की दृष्टि से सुझाव दिए गए हैं।

1.51 'समग्र मूल्यांकन' नामक ग्यारहवें अध्याय में रिपोर्ट के विभिन्न अध्यायों में निकाले गए प्रमुख निष्कर्षों और सुझावों का जोड़ प्रस्तुत किया गया है तथा उभरती चुनौतियों को कारगर तरीके से पूरा करने के लिए बैंकों तथा रिज़र्व बैंक को समर्थ बनाने की दृष्टि से कुछ अंतिम टिप्पणियां की गई हैं।